E-ISSN-2584-2870 DOI: https://doi.org/10.65833/dbs.2026.010

देवभूमि-सौरभम्
Devabhūmisaurabham

Vol 2 Issue 2 July-Dec 2025 Devabhūmisaurabham International Journal of CSU Shri Raghunath Kirti Campus Devprayag Uttarakhand India

कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति: भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म, नीति और लोककल्याण का समन्वय

डॉ. दिनेश चन्द्र पाण्डेय
हे.न.ब. गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, डॉ बी. जी. आर. परिसर पौड़ी
गोकुल चन्द्र फुलारा
हे.न.ब. गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, डॉ बी. जी. आर. परिसर पौड़ी

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-पत्र "कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति: भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म, नीति और लोककल्याण का समन्वय" विषय के अंतर्गत कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रतिपादित न्यायिक व्यवस्था और दण्ड-नीति का भारतीय ज्ञान परम्परा के सैद्धान्तिक आलोक में विश्लेषण करता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कौटिल्य की न्याय-दृष्टि केवल दमनकारी या सत्ता-केंद्रित न होकर धर्म, नैतिकता और लोकहित से गहराई से जुड़ी हुई है।

अर्थशास्त्र में न्यायप्रणाली का आधार धर्म, व्यवहार और राज्यहित है, जहाँ न्यायालय, धर्मस्थ, अमात्य तथा राजा सभी न्यायिक उत्तरदायित्व से बँधे हुए हैं। दण्ड का निर्धारण अपराध की प्रकृति, सामाजिक स्थिति और परिस्थितिजन्य तत्वों के अनुसार किया जाना कौटिल्य की मानवीय और विवेकपूर्ण दृष्टि को दर्शाता है। यह शोध यह तर्क प्रस्तुत करता है कि कौटिल्य की न्यायप्रणाली भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित राजधर्म, लोककल्याणकारी राज्य और नैतिक शासन की अवधारणाओं का व्यवस्थित रूप है। मनुस्मृति और महाभारत (विशेषतः शान्तिपर्व) की परम्परा में विकसित दण्ड और न्याय की अवधारणाएँ अर्थशास्त्र में एक व्यवहारिक, प्रशासनिक और संस्थागत स्वरूप ग्रहण करती हैं। समकालीन विधिक और शासन-चिन्तन के संदर्भ में यह अध्ययन यह स्थापित करता है कि कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति आज भी न्यायिक विवेक, उत्तरदायित्व और लोकहित-आधारित शासन के लिए प्रासंगिक मार्गदर्शन प्रदान करती है।

कूट शब्द

कौटिल्य, अर्थशास्त्र, न्यायप्रणाली, दण्ड-नीति, भारतीय ज्ञान परम्परा, धर्म और राजधर्म, लोककल्याण।

भूमिका

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति को केवल प्रशासनिक उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था, नैतिक अनुशासन और लोककल्याण के मूल आधार के रूप में देखा गया है। इस परम्परा में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक ऐसा विशिष्ट ग्रंथ है, जो राज्य, समाज और व्यक्ति के बीच संतुलन स्थापित करने वाली न्याय-दृष्टि प्रस्तुत करता है। कौटिल्य का चिंतन न तो आदर्शवाद तक सीमित है और न ही मात्र सत्ता-केन्द्रित यथार्थवाद तक, बल्कि यह धर्म, नीति और व्यवहारिक विवेक के समन्वय से निर्मित एक सुसंगत शासन-दर्शन है।[1]

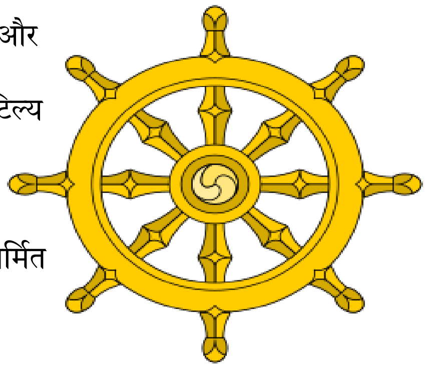

अर्थशास्त्र में न्यायप्रणाली का उद्देश्य केवल विवाद-निराकरण नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिरता, विश्वास और विधि-आधारित शासन की स्थापना है। न्यायालयों की संरचना, न्यायाधीशों की योग्यता, साक्ष्य-प्रणाली और निर्णय-प्रक्रिया यह दर्शाती है कि कौटिल्य न्याय को एक संस्थागत और उत्तरदायी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। न्यायिक व्यवस्था में राजा की भूमिका सर्वोच्च होते हुए भी निरंकुश नहीं है; वह धर्म और विधि के अधीन बंधा हुआ है। यह पक्ष कौटिल्य के शासन-विचार में निहित संवैधानिक चेतना को उजागर करता है।

दण्ड-नीति कौटिल्य के राज्य-दर्शन का केन्द्रीय तत्व है। दण्ड को वे सामाजिक अनुशासन और राज्य-सुरक्षा का आवश्यक साधन मानते हैं, किंतु उसका प्रयोग विवेक, अनुपात और परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। अपराध की प्रकृति, अपराधी की सामाजिक स्थिति और परिस्थितिजन्य कारणों को ध्यान में रखकर दण्ड निर्धारण की अवधारणा कौटिल्य की मानवीय दृष्टि को प्रतिबिंबित करती है। इस प्रकार दण्ड भय का साधन न होकर सुधार, निवारण और लोककल्याण का उपकरण बनता है।

[1] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 1.4 — राज्य के मूल कर्तव्यों और न्याय की अवधारणा पर चर्चा।

भारतीय ज्ञान परम्परा में विकसित राजधर्म, धर्मशास्त्र और महाभारत के शान्तिपर्व में प्रतिपादित न्याय-बोध का व्यवहारिक और प्रशासनिक रूप अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध की भूमिका इसी पृष्ठभूमि में कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति को भारतीय ज्ञान परम्परा के व्यापक दार्शनिक और नैतिक संदर्भ में समझने का आधार प्रदान करती है।

अतः कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र केवल राजनीति, कूटनीति या अर्थनीति का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रशासनिक एवं विधिक प्रणाली का मार्गदर्शन भी करता है। इसमें न्याय को शासन का एक महत्वपूर्ण आधार माना गया है। कौटिल्य का मानना था कि यदि राज्य को स्थायित्व और प्रजा को सुख-शांति देनी है, तो न्यायिक व्यवस्था प्रभावी और निष्पक्ष होनी चाहिए।

न्याय का उद्देश्य

कौटिल्य के अनुसार, राज्य की स्थिरता और प्रजा के कल्याण की नींव एक मजबूत एवं निष्पक्ष न्याय प्रणाली पर आधारित होनी चाहिए। उन्होंने अर्थशास्त्र में स्पष्ट किया है कि न्याय केवल दंड या दमन का माध्यम नहीं है, बल्कि वह सामाजिक समरसता, धर्म और नीति का वाहक है।[2]

"धर्मस्य मूलं नीतिः"

(नीति ही धर्म का मूल है)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि नीति अर्थात व्यवहारिक न्याय और राज्य द्वारा निर्धारित नियम ही धर्म का वास्तविक रूप हैं। धर्म को यहां धार्मिक अनुष्ठान की बजाय नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा गया है।

कौटिल्य न्याय को चार प्रमुख उद्देश्यों से जोड़ते हैं:

1. राज्य की स्थिरता बनाए रखना

न्याय व्यवस्था यदि निष्पक्ष और दृढ़ हो, तो राज्य के भीतर कोई भी अराजकता या विद्रोह उत्पन्न नहीं होता। इससे शासन प्रणाली स्थिर और प्रभावशाली बनी रहती है।

---

[2] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 1.19 — राजा की न्यायिक भूमिका और धर्माधीन सत्ता का सिद्धांत।

2. प्रजा का कल्याण और विश्वास

जब राजा समान रूप से सभी नागरिकों के साथ न्याय करता है - बिना जाति, वर्ग या पद के भेदभाव के तो प्रजा में शासन के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है और सामाजिक संतुलन बना रहता है।

3. दुष्टों का दमन एवं सज्जनों की रक्षा

कौटिल्य मानते थे कि दंड (सजा) का उद्देश्य केवल दुष्टों को दंडित करना नहीं है, बल्कि सज्जनों की रक्षा करना और सामाजिक शांति बनाए रखना है।

4. नैतिकता और नीति की स्थापना

न्याय प्रणाली के माध्यम से राजा समाज में यह संदेश देता है कि नीति और नैतिकता के विरुद्ध आचरण करने वालों को दंड मिलेगा, चाहे वे कोई भी हों।

न्याय का स्रोत

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में न्याय की उत्पत्ति और आधार के लिए **चार प्रमुख स्रोतों** का उल्लेख किया है। उनके अनुसार, न्याय कोई एकपक्षीय या केवल धार्मिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि वह विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजकीय तत्वों का समन्वित स्वरूप है। कौटिल्य का दृष्टिकोण पूर्णतः **यथार्थवादी और व्यवहारिक** है, जहाँ उन्होंने राज्य की स्थिरता और कल्याण को न्याय का अंतिम लक्ष्य माना है।

क्रमांक	न्याय का स्रोत	परिभाषा / अर्थ	उदाहरण / उपयोग	महत्व
1.	धर्म (Sacred Law)	वैदिक धर्म, स्मृतियाँ और धार्मिक ग्रंथों पर आधारित नियम	विवाह, उत्तराधिकार, यज्ञ, धार्मिक विवाद	धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से न्याय को निर्देशित करता है
2.	व्यवहार(Custom)	समाज में प्रचलित परंपराएँ, लोकाचार और सांस्कृतिक मान्यताएँ	जातीय रीति-रिवाज, विवाह की स्थानीय	समाज के व्यावहारिक अनुभव पर आधारित;

			परंपरा, ग्राम पंचायतों के नियम	लचीलापन प्रदान करता है
3.	चार (Royal Decree)	राजा द्वारा विधि रूप में जारी आदेश और शासकीय निर्देश	कर व्यवस्था, दंड निर्धारण, प्रशासनिक नियम	शासन व्यवस्था को नियंत्रित करता है; नीति-निर्माण में सहायक
4.	राजशासन(King's Will)	राजा द्वारा राज्यहित में तर्क एवं विवेक से लिया गया निर्णय	युद्ध या आपात स्थिति में त्वरित निर्णय, धर्म व परंपरा से विपरीत लेकिन राज्य हितकारी निर्णय	सर्वोच्च स्रोत; जब अन्य तीनों में विरोध हो तब अंतिम निर्णायक

यदि चारों स्रोतों में विरोध हो, तो राजशासन को सर्वोपरि माना जाता है, क्योंकि कौटिल्य के अनुसार, राज्य का कल्याण और सुरक्षा न्याय का अंतिम उद्देश्य है।

इस प्रकार, कौटिल्य का न्याय तंत्र न केवल धार्मिक या परंपरागत नियमों पर आधारित है, बल्कि राजनीतिक यथार्थ, सामाजिक आवश्यकताओं और राजकीय प्राथमिकताओं का संतुलन भी उसमें समाहित है। यह दृष्टिकोण न्याय को स्थूलता से निकालकर एक सशक्त शासन-उपकरण बना देता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित न्यायालय व्यवस्था अत्यंत संगठित, बहुस्तरीय और व्यावहारिक थी। उन्होंने न केवल शाही न्यायालयों का उल्लेख किया, बल्कि ग्राम और नगर स्तर पर भी न्यायिक संस्थाओं की संरचना दी है, जिससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मौर्य प्रशासन में न्याय-प्रणाली को अत्यधिक महत्व दिया गया था।

न्यायालय व्यवस्था

1. राजा एवं धर्मस्थेय-अध्यक्ष (Chief Justice)

राजा को सर्वोच्च न्यायाधीश माना गया है। यदि वह स्वयं निर्णय नहीं करता, तो उसकी ओर से धर्मस्थेय-अध्यक्ष (Chief Justice) न्याय करता था। यह अधिकारी न्यायशास्त्र में निपुण, धर्मज्ञ, निष्पक्ष और नीतिपरायण होता था।[3]

[3] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 3.1–3.20 — न्यायालयों की संरचना एवं न्यायिक प्रक्रिया का विवरण।

2. मुख्य दो प्रकार के न्यायालय

कौटिल्य ने दो प्रमुख प्रकार के न्यायालयों का वर्णन किया है:[4]

न्यायालय के प्रकार	प्रकृति	कार्यक्षेत्र	प्रमुख विशेषताएँ
धर्मस्थेय न्यायालय	यह न्यायालय सिविल मामलों से संबंधित था, अर्थात् नागरिक विवादों के निपटारे के लिए स्थापित किया गया था।	१.भूमि, ऋण, व्यापार, उत्तराधिकार, विवाह, दायभाग, झगड़े आदि से संबंधित विवाद २.सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं के अनुसार निर्णय	१.यह न्यायालय वेद, धर्मशास्त्र और प्रचलित रीति-रिवाजों पर आधारित निर्णय देता था। २.न्यायाधीश (धर्मस्थेय-अध्यक्ष) को धार्मिक एवं विधिक ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिए। ३.गवाह, प्रमाण और पक्षों के कथनों के आधार पर निष्पक्ष निर्णय किया जाता था। ४.यदि विवाद अधिक जटिल होता, तो राजा स्वयं हस्तक्षेप कर सकता था।
कंटकशोधन न्यायालय	यह न्यायालय दंडनायक (police/magistrate) के अधीन कार्य करता था और इसका दायित्व आपराधिक न्याय प्रदान करना था।	१.चोरी, हत्या, घूसखोरी, षड्यंत्र, धोखाधड़ी, अपहरण, सामाजिक उपद्रव, राजद्रोह आदि। २.आर्थिक अपराध, वस्तु-विक्रय में ठगी, व्यापारिक धोखाधड़ी, कालेबाज़ारी आदि।	१.यह न्यायालय शासकीय नियंत्रण और गुप्तचर रिपोर्टों के आधार पर भी कार्रवाई कर सकता था। २.अपराध सिद्ध होने पर कठोर दंड दिए जाते थे—जैसे जुर्माना, निर्वासन, कारावास, या शारीरिक दंड। ३.यह न्यायालय राज्य की सुरक्षा, प्रशासन की स्वच्छता और शांति बनाए रखने के लिए उत्तरदायी था।

[4] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 3.11 — धर्मस्थेय और कंटकशोधन न्यायालयों का विभाजन।

तुलनात्मक दृष्टि से

तत्व	धर्मस्थेय न्यायालय	कंटकशोधन न्यायालय
कार्य	सिविल विवादों का निपटारा	आपराधिक मामलों की सुनवाई
आधार	धर्मशास्त्र, रीति-रिवाज	राज्यनीति, गुप्तचर रिपोर्ट
अध्यक्ष	धर्मस्थेय-अध्यक्ष	दंडाध्यक्ष / कंटकशोधन अधिकारी
प्रक्रिया	प्रमाण, गवाह, तर्क	जांच, साक्ष्य, दंडात्मक निर्णय
उद्देश्य	समाज में न्याय और धर्म की स्थापना	अपराध नियंत्रण और राज्य व्यवस्था बनाए रखना

कौटिल्य की न्याय प्रणाली में इन दोनों न्यायालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। एक ओर जहां धर्मस्थेय न्यायालय सामाजिक शांति एवं धार्मिक न्याय का आधार था, वहीं कंटकशोधन न्यायालय अपराधों पर नियंत्रण और शासकीय अनुशासन का माध्यम था। दोनों मिलकर तत्कालीन शासन व्यवस्था में न्याय और व्यवस्था का संतुलन बनाए रखते थे।

न्याय की विशेषताएँ –

1. निष्पक्षता

न्याय प्रणाली में पक्षपात की कोई गुंजाइश नहीं थी। न्यायाधीशों को आदेश था कि वे न तो राजा के पक्ष में झुकें, न ही किसी प्रभावशाली वर्ग की धमकियों या प्रलोभनों में आएँ। **"राजा को चाहिए कि वह न्याय करते समय पिता या पुत्र में भेद न करे।"** यह कथन न्याय की निष्पक्षता को स्पष्ट करता है।[5][6]

---

[5] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 4.8 — न्यायसंगत दण्ड और अनुपातिक दण्ड का सिद्धांत।

[6] मनु, *मनुस्मृति*, 8.12 — न्याय में निष्पक्षता और प्रमाण का महत्व।

2. समयबद्धता और त्वरित न्याय (Timely Justice)

कौटिल्य ने न्याय प्रक्रिया में अनावश्यक विलंब को अनुचित माना।

- उन्होंने स्पष्ट किया कि न्याय में देरी से जनता का शासन से विश्वास उठ जाता है।
- न्यायालयों को यह निर्देश था कि मामलों को शीघ्रता से सुना जाए और उचित प्रमाण के आधार पर जल्द निर्णय दिया जाए।

3. साक्ष्य आधारित निर्णय (Evidence-Based Justice)

अर्थशास्त्र में प्रमाण (Evidence) और साक्षी (Witness) को न्याय की रीढ़ कहा गया है।[7]

- निर्णय के लिए वाचिक (मौखिक), लिखित और भौतिक प्रमाणों को महत्त्व दिया गया।
- न्यायाधीश को जांच कर यह तय करना होता था कि कौन सा प्रमाण विश्वसनीय है।

4. झूठे गवाहों को दंड (Punishment for False Witness)

कौटिल्य ने न्याय में झूठे गवाह या मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करने वालों के लिए कठोर दंड का प्रावधान किया:

- यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी निर्दोष के विरुद्ध गवाही देता है, तो उसे उसी दंड से दंडित किया जाता था, जो दोषी को मिलना था।
- इससे न्याय की पवित्रता बनी रहती थी और भय से लोग झूठ बोलने से बचते थे।

5. कमज़ोर वर्गों की सुरक्षा (Protection of the Vulnerable)

कौटिल्य ने समाज के निर्बल वर्गों - जैसे स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों और ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण प्रदान किया:

- इन वर्गों के प्रति अपराधों के लिए कठोर दंड निश्चित किए गए।
- उनके मामलों में विशेष संवेदनशीलता और सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया जाता था।

---

[7] कौटिल्य, *अर्थशास्त्र*, 3.16 — साक्ष्य, गवाह और प्रमाण आधारित न्याय।

अतः कौटिल्य की न्यायप्रणाली न केवल प्राचीन भारत की एक सुव्यवस्थित और सुदृढ़ विधिक व्यवस्था को दर्शाती है, बल्कि यह आधुनिक समय के लिए भी अनुकरणीय मार्गदर्शक सिद्ध होती है। उनके द्वारा रचित *अर्थशास्त्र* में वर्णित न्यायिक सिद्धांत अत्यंत व्यवहारिक, नैतिक, और राज्य-हितैषी हैं।

उन्होंने यह स्पष्ट किया कि न्याय सिर्फ़ दंड देने का माध्यम नहीं है, बल्कि राज्य की स्थिरता, सामाजिक संतुलन और लोककल्याण का मूलाधार है। कौटिल्य मानते थे कि जब प्रजा को त्वरित, निष्पक्ष और प्रमाण आधारित न्याय प्राप्त होता है, तो उसमें न केवल राज्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है, बल्कि समाज में नैतिक अनुशासन और धार्मिक चेतना भी प्रबल होती है।

कौटिल्य की दृष्टि में राजा को स्वयं भी एक 'धर्मपालक' (Protector of Dharma) और 'न्याय के संरक्षक' की भूमिका निभानी चाहिए। उनका मानना था कि यदि राजा न्यायपूर्ण शासन नहीं करता तो वह *राजा* नहीं, बल्कि दंडकोश का शत्रु है। उन्होंने न्याय के चार स्रोतों (धर्म, व्यवहार, चार और राजशासन) के माध्यम से यह सुनिश्चित किया कि विधिक प्रक्रिया धार्मिक मर्यादा, सामाजिक परंपरा, प्रशासनिक आदेश और राज्य-हित। इन सभी का संतुलन बनाकर चले।

अर्थशास्त्र की न्यायप्रणाली में जो निष्पक्षता, समयबद्धता, साक्ष्य आधारित निर्णय, और कमज़ोर वर्गों की सुरक्षा जैसी विशेषताएँ दिखाई देती हैं, वे आज के **Rule of Law (कानून का शासन)** की अवधारणा से अत्यधिक मेल खाती हैं।

दण्ड-नीति

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शासन को सुचारु रूप से चलाने हेतु दण्ड को अत्यंत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, दण्ड केवल अपराधियों को दंडित करने का उपाय नहीं है, बल्कि यह राज्य की रक्षा, सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, और लोककल्याण का प्रमुख माध्यम है।

दण्ड का स्वरूप

कौटिल्य के अनुसार, दण्ड शासन की वह शक्ति है जो राज्य को अनुशासित, संगठित और स्थिर बनाए रखती है। इसे वे **"राज्य की भुजा"** कहते हैं, अर्थात शासन की वह दृढ़ भुजा जो असामाजिक तत्वों, अपराधियों और विधि का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध कार्रवाई करती है। यदि यह शक्ति निष्क्रिय हो जाए या अनुचित रूप से प्रयुक्त हो,

तो राज्य में अराजकता और अव्यवस्था फैलना निश्चित है। कौटिल्य का मानना था कि प्रजा स्वेच्छाचार की ओर तब मुड़ती है जब शासन में दण्ड की व्यवस्था या तो अनुपस्थित होती है या फिर उसका प्रयोग पक्षपातपूर्ण होता है। उन्होंने अनुसार-

"दण्ड एव भयस्य कारणम्"

(दण्ड ही भय उत्पन्न करता है)

इस कथन से स्पष्ट होता है कि **दण्ड का उद्देश्य प्रजा को डराना नहीं, बल्कि उन्हें अनुशासन और नीति के मार्ग पर बनाए रखना है।** यह भय व्यक्ति को अपने कर्तव्यों के प्रति सजग करता है और उसे समाज की व्यवस्था में सहभागी बनाता है। कौटिल्य के अनुसार, जिस राज्य में दण्ड का समुचित और न्यायसंगत प्रयोग होता है, वहाँ न केवल अपराध की घटनाएँ कम होती हैं, बल्कि धर्म, अर्थ और काम के सभी स्तम्भ सुचारु रूप से कार्य करते हैं। यही कारण है कि वे दण्ड को **"त्रिवर्गस्य रक्षणं"** (धर्म, अर्थ और काम की रक्षा करने वाला) मानते हैं।[8]

दण्ड के प्रकार

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दण्ड के कई रूपों का उल्लेख किया है, जिन्हें उन्होंने अपराध की प्रकृति, उसकी गंभीरता, सामाजिक प्रभाव और अपराधी के वर्ग के अनुसार वर्गीकृत किया। उनके अनुसार, दण्ड केवल प्रतिशोध नहीं है, बल्कि समाज में अनुशासन बनाए रखने, न्याय स्थापित करने और अपराध की पुनरावृत्ति को रोकने का एक व्यवस्थित साधन है।

1. शारीरिक दण्ड

इस प्रकार के दण्ड में अपराधी को शारीरिक पीड़ा पहुँचाई जाती थी, जैसे – कोड़े मारना, अंगभंग करना, शरीर पर चिह्न बनाना आदि। यह दण्ड उन अपराधों के लिए दिया जाता था जिनमें हिंसा, हत्या, व्यभिचार या सार्वजनिक अशांति शामिल हो। इसका उद्देश्य अपराधी को शारीरिक पीड़ा देकर चेतावनी देना और समाज में भय उत्पन्न करना था।

[8] व्यास, *महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय 15 — दण्ड, शासन और लोककल्याण का संबंध।

2. आर्थिक दण्ड

यह सबसे अधिक प्रयुक्त दण्ड था। अपराध के बदले में आर्थिक जुर्माना लगाया जाता था। यह दण्ड चोरी, धोखाधड़ी, अनुबंध उल्लंघन, व्यापार में कदाचार जैसे आर्थिक अपराधों के लिए उपयुक्त था। जुर्माने की राशि अपराध की गंभीरता और अपराधी की आर्थिक स्थिति के अनुसार निर्धारित की जाती थी। कौटिल्य ने स्पष्ट किया कि यह दण्ड राजकोष की वृद्धि में भी सहायक होता है।

3. कारावास

अपराधी को निश्चित अवधि के लिए जेल में रखने का प्रावधान था। यह दण्ड उन अपराधों के लिए था जिनमें सुधार की संभावना हो, या जब तात्कालिक रूप से अपराधी को समाज से पृथक रखना आवश्यक हो। कौटिल्य ने यह भी कहा कि कारावास के दौरान अपराधी को श्रम में लगाया जा सकता है जिससे राज्य को उपयोगिता भी प्राप्त हो।

4. निर्वासन या मृत्युदण्ड

यह सबसे कठोर दण्ड था। निर्वासन उन अपराधों के लिए था जहाँ अपराधी को समाज से पूर्णतः बाहर करना जरूरी हो – जैसे राजद्रोह, षड्यंत्र, या गंभीर धार्मिक अपराध। मृत्युदण्ड का प्रावधान हत्या, देशद्रोह, जहर देना, राजा के विरुद्ध षड्यंत्र आदि अति गंभीर अपराधों के लिए था। कौटिल्य ने इस दण्ड को अंतिम उपाय माना, जब अपराध से राज्य की सुरक्षा और व्यवस्था पर सीधा खतरा हो।

न्यायसंगत दण्ड का सिद्धांत

कौटिल्य की दण्डनीति का मूल आधार न्याय है। उन्होंने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि दण्ड का प्रयोग केवल शक्ति प्रदर्शन या प्रतिशोध के रूप में नहीं, बल्कि न्याय एवं नीति के अनुरूप ही किया जाना चाहिए। यदि दण्ड अन्यायपूर्ण, पक्षपातपूर्ण या असंतुलित रूप से दिया जाए, तो उसका परिणाम न केवल जन-कल्याण के विरुद्ध होता है, बल्कि राज्य की स्थिरता और वैधता भी संकट में पड़ जाती है।

"अयुक्ते दण्डे प्रजा नश्यति।"

भावार्थ:

यदि दण्ड उचित नीति, प्रमाणिक साक्ष्य और तर्क के आधार पर न देकर, व्यक्तिगत द्वेष, पक्षपात, अज्ञान या अधीरता के साथ दिया जाए, तो उससे प्रजा में असंतोष उत्पन्न होता है। ऐसा अन्यायपूर्ण दण्ड अंततः समाज में भय, अविश्वास और विद्रोह को जन्म देता है।

कौटिल्य के अनुसार, दण्ड का मूल उद्देश्य केवल दमन नहीं बल्कि समाज में संतुलन, नैतिकता और विश्वास की स्थापना है। यदि दण्ड न्याय की भावना से प्रेरित न हो, तो यह दण्ड नहीं, अत्याचार बन जाता है - और ऐसा अत्याचार अंततः राज्य के विनाश का कारण बनता है।

कौटिल्य का दण्ड-सिद्धांत केवल प्राचीन शासन व्यवस्था का हिस्सा नहीं है, बल्कि वह आज भी अत्यंत प्रासंगिक, व्यवहारिक और नीतिनिष्ठ है। उन्होंने दण्ड को न तो केवल दमन का औजार माना और न ही शक्ति प्रदर्शन का माध्यम। इसके विपरीत, उन्होंने इसे राज्य की स्थिरता, सामाजिक संतुलन और लोककल्याण के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया।

दण्ड केवल भय नहीं, व्यवस्था की नींव है

कौटिल्य का मानना था कि बिना उचित दण्ड के न तो राज्य सुरक्षित रह सकता है और न ही समाज में अनुशासन बना रह सकता है। उन्होंने कहा था -

"दण्ड एव भयस्य कारणम्"

भय आवश्यक है, पर यह भय न्यायसंगत और नैतिक हो - अन्यथा यह आतंक बन जाता है।

दण्ड में न्याय और नीति का समन्वय आवश्यक है

कौटिल्य के अनुसार, दण्ड न्याय के अधीन होना चाहिए, न कि राजा की इच्छा के। यदि दण्ड अनुचित, पक्षपातपूर्ण या अंधाधुंध हो, तो वह राज्य के लिए घातक सिद्ध होता है। उन्होंने चेतावनी दी –

"अयुक्ते दण्डे प्रजा नश्यति"

(न्यायविहीन दण्ड से प्रजा का नाश होता है।)

समाज के सभी वर्गों के लिए समान और अनुकूल दृष्टिकोण

कौटिल्य ने दण्ड निर्धारण में केवल अपराध नहीं, बल्कि अपराधी की स्थिति, भूमिका और सामाजिक संदर्भ को भी महत्त्व दिया। इससे स्पष्ट होता है कि वे सिर्फ विधिक नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण भी अपनाते हैं। कौटिल्य की दण्डनीति विधिक शासन (Rule of Law) की आधारशिला के समान है। आज के लोकतांत्रिक देशों में दण्ड व्यवस्था को न्यायिक प्रक्रिया, नैतिकता और मानवीय अधिकारों से जोड़ा गया है। यह दृष्टिकोण कौटिल्य की सोच से मेल खाता है।[9]

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में विकसित शासन, धर्म और लोककल्याण की अवधारणाओं का एक सुसंगठित और व्यवहारिक रूप है। अर्थशास्त्र में न्याय को केवल विधिक प्रक्रिया तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे सामाजिक संतुलन, नैतिक अनुशासन और राज्य की स्थिरता से जोड़ा गया है। कौटिल्य का यह दृष्टिकोण भारतीय राजनीतिक चिन्तन की उस परम्परा को आगे बढ़ाता है, जिसमें शासन का अंतिम उद्देश्य लोकहित और समाज की सुव्यवस्था माना गया है।

कौटिल्य की न्यायप्रणाली यह दर्शाती है कि न्याय एक संस्थागत और उत्तरदायी प्रक्रिया है, जिसमें न्यायाधीश, अमात्य और राजा सभी धर्म और विधि के अधीन कार्य करते हैं। राजा को सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होते हुए भी न्यायिक उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं किया गया है। यह तथ्य अर्थशास्त्र में निहित संवैधानिक चेतना और विधि-प्रधान शासन की अवधारणा को रेखांकित करता है। न्याय का यह स्वरूप भारतीय ज्ञान परम्परा में विकसित राजधर्म की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में सामने आता है।

दण्ड-नीति के संदर्भ में कौटिल्य का चिंतन संतुलित और यथार्थवादी है। दण्ड को वे सामाजिक अनुशासन और राज्य-सुरक्षा का साधन मानते हैं, किंतु उसका उद्देश्य दमन नहीं, बल्कि अपराध-निवारण, सुधार और लोककल्याण है। अपराध की प्रकृति, परिस्थितियाँ और सामाजिक संदर्भ के आधार पर दण्ड निर्धारण की अवधारणा कौटिल्य की मानवीय और विवेकपूर्ण दृष्टि को प्रकट करती है। इस प्रकार दण्ड भय का उपकरण न होकर न्याय और व्यवस्था का संरक्षक बनता है।

---

[9] भारत का संविधान, अनुच्छेद 14 — विधि के समक्ष समानता (तुलनात्मक संदर्भ)।

समग्रतः यह अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि कौटिल्य की न्यायप्रणाली एवं दण्ड-नीति भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म, नीति और लोककल्याण के समन्वय पर आधारित एक सुदृढ़ शासन-दर्शन का निर्माण करती है। समकालीन भारतीय विधिक और प्रशासनिक विमर्श के लिए यह चिंतन आज भी न्यायिक विवेक, उत्तरदायित्व और लोकहित-आधारित शासन की दिशा में महत्वपूर्ण बौद्धिक प्रेरणा प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

पुस्तकें

- कौटिल्य. (ईसा पूर्व 4वीं शताब्दी). *अर्थशास्त्र.* (विविध संस्कृत संस्करण)।
- मनु. (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी–ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी). *मनुस्मृति.* संस्कृत पाठ।
- व्यास. (ईसा पूर्व 1 सहस्राब्दी). *महाभारत* (विशेषतः शान्तिपर्व). संस्कृत पाठ।
- शुक्ल, रामचन्द्र. (1937). *भारतीय राजनीतिक विचार.* इलाहाबाद: हिंदी साहित्य सम्मेलन।
- काणे, पाण्डुरंग वामन. (1941–1962). *धर्मशास्त्र का इतिहास* (खंड 1–5). पुणे: भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
- शर्मा, रमाशंकर. (1968). *प्राचीन भारत में राज्य और समाज.* दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन।
- रंगराजन, एल. एन. (1992). *कौटिल्य: द आर्थशास्त्र.* नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
- बाशम, ए. एल. (1996). *द वंडर दैट वाज़ इंडिया.* नई दिल्ली: रूपा।
- चक्रवर्ती, उमाशंकर. (2007). *प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन.* दिल्ली: पियर्सन।

शोध पत्र एवं लेख

- Altekar, A. S. (1949). “The Kingship in Ancient India.” *Journal of the Bihar and Orissa Research Society*, 35(2), 121–145.
- Ghoshal, U. N. (1959). “Judicial Administration under the Mauryas.” *Indian Historical Quarterly*, 35(1), 45–67.

- Thapar, Romila. (1984). "State Formation in Early India." *Economic and Political Weekly*, 19(14), 563–571.
- Sen, Amartya. (2009). "Justice and Social Ethics in Indian Thought." *Journal of Law and Ethics*, 12(3), 201–215.
- Shankar, U. (2018). "Punishment and Governance in Kautilya's Arthashastra." *Indian Journal of Political Science*, 79(4), 623–638.

ऑनलाइन स्रोत

- Shodhganga. (विभिन्न वर्ष). *कौटिल्य एवं प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था पर शोध-प्रबंध.* यूजीसी ई-थीसिस पोर्टल।
- Ministry of Education, Government of India. (2020). *Indian Knowledge Systems: Conceptual Framework.*
- IGNCA. (2021). *Indian Political and Legal Traditions.* इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र।
- National IKS Division. (2022). *Indian Knowledge Systems and Governance.*

अन्य स्रोत

- भारतीय संविधान. (1950). भारत सरकार।
- विधि आयोग की रिपोर्टें (Law Commission Reports of India) – न्याय और दण्ड सुधार से संबंधित चयनित रिपोर्टें।

****